बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि बलराम ने किस तरह रैवतक पर्वत में व्रज की तरुणियों के साथ रमण किया और वहाँ द्विविद नामक वानर का वध किया।

नरकासुर राक्षस का जिसका वध कृष्ण ने किया था, उसका एक मित्र था, जिसका नाम द्विविद था। यह वानर (गोरिल्ला) था। द्विविद अपने मित्र की मृत्यु का बदला लेना चाहता था, अतएव उसने ग्वालों के घरों को आग लगा दी, कृष्ण के आनर्त प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और अपनी विशाल भुजाओं से समुद्र के जल को मथ कर समुद्री तट-प्रदेश को आप्लावित कर दिया। फिर इस धूर्त ने महामुनियों के आश्रमों के वृक्षों को तोड़ डाला और यज्ञ की अग्नि में मल-मूत्र विसर्जित कर दिया। उसने स्त्रियों तथा पुरुषों का अपहरण करके उन्हें पर्वत-गुफाओं में बन्दी बनाकर बाहर से बड़ी बड़ी शिलाओं से उनके द्वार बन्द कर दिये। इस तरह समूचे प्रदेश को ध्वंस करके तथा अनेक उच्च कुल की तरुणियों का शील भंग करके द्विविद रैवतक पर्वत में आया, जहाँ उसने बलदेवजी को सुन्दर स्त्रियों की टोली के साथ रमण करते देखा। वारुणी मदिरा पीकर उन्मत्त हुए बलदेव की परवाह न करते हुए द्विविद उन्हीं के समक्ष उन स्त्रियों को अपना गुप्तांग दिखाने लगा और अपनी भौंहों से भद्दे भद्दे इशारे करके तथा मल-मूत्र विसर्जित करके, उनको अपमानित करने लगा।

द्विविद के इस रोषपूर्ण आचरण से बलदेव क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उस वानर के ऊपर एक पत्थर फेंका। किन्तु द्विविद ने अपने को बचा लिया। तब उसने बलदेव का उपहास किया और स्त्रियों के वस्त्र खींचने लगा। उसकी यह अभद्रता देखकर बलदेव ने उसे मार डालने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी गदा और अपना हल उठाया। तब बलशाली द्विविद ने पृथ्वी से एक शाल वृक्ष उखाड़ा और इस वृक्ष से उनके सिर पर प्रहार किया। किन्तु बलदेवजी अविचलित रहे और इस वृक्ष के तने को खण्ड खण्ड कर डाला। द्विविद ने दूसरा वृक्ष उखाड़ा और इस तरह एक के बाद एक वृक्ष उखाड़ कर जंगल को उजाड़ बना दिया। यद्यपि उसने बलदेव के सिर पर एक के बाद एक प्रहार किये किन्तु उन्होंने उन सबों को खण्ड खण्ड कर डाला। इसके बाद वह मूर्ख वानर उन पर पत्थर फेंकने लगा। किन्तु बलदेव ने इन्हें भी चूर चूर कर दिया। इसके बाद उसने बलदेव पर आक्रमण किया और मुक्कों से उनकी छाती पर प्रहार किया, जिससे वे अति क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपनी गदा तथा हल को एक तरफ रखते हुए

द्विविद के गले तथा कंधे पर प्रहार किया, जिस पर वह वानर रक्त उगलने लगा और गिर कर मर गया।

द्विविद को मार कर बलदेव जब द्वारका के लिए रवाना हुए तो देवताओं तथा ऋषियों ने आकाश से उन पर फूलों की वर्षा की और उनकी स्तुतियाँ कीं तथा उन्हें नमस्कार किया।

श्रीराजोवाच
भुयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा—यशस्वी राजा (परीक्षित) ने; उवाच—कहा; भूयः—आगे; अहम्—मैं; श्रोतुम्—सुनने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; रामस्य—बलराम के; अद्भुत—विस्मयकारी; कर्मणः—कार्यकलाप; अनन्तस्य—अनन्त के; अप्रमेयस्य—अथाह, अपार; यत्—जो; अन्यत्—दूसरा; कृतवान्—किया; प्रभुः—प्रभु ने।

यशस्वी राजा परीक्षित ने कहा : मैं अनन्त तथा अपार भगवान् श्रीबलराम के विषय में और आगे सुनना चाहता हूँ जिनके कार्यकलाप अतीव विस्मयकारी हैं। उन्होंने और क्या किया?

श्रीशुक उवाच
नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नरकस्य—नरकासुर का; सखा—मित्र; कश्चित्—कोई; द्विविदः—द्विविद; नाम—नामक; वानरः—वानर; सुग्रीव—राजा सुग्रीव; सचिवः—जिसका सलाहकार; सः—वह; अथ—भी; भ्राता—भाई; मैन्दस्य—मैन्द का; वीर्य-वान्—शक्तिशाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : द्विविद नाम का एक वानर था, जो नरकासुर का मित्र था। यह शक्तिशाली द्विविद मैन्द का भाई था और राजा सुग्रीव ने उसे आदेश दिया था।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने द्विविद वानर के विषय में कुछ रोचक बातों का संकेत किया है। यद्यपि द्विविद भगवान् रामचन्द्र का संगी था किन्तु बाद में नरकासुर की कुसंगति से वह दूषित हो गया जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*नरकस्य सखा।* यह कुसंगति द्विविद के उस अपराध का फल थी जो उसने अपने बल के कारण गर्वित होकर श्रीरामचन्द्र के भाई लक्ष्मण तथा अन्यों का अनादर करके किया था। जो लोग भगवान् रामचन्द्र की पूजा करते हैं, वे कभी कभी मैन्द और द्विविद की स्तुति भगवान् के सेवक-विग्रहों के रूप में करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार इस श्लोक में वर्णित मैंद तथा द्विविद इन्हीं विग्रहों के मान्यताप्राप्त अंश हैं, जो भगवान् रामचन्द्र के वैकुण्ठधाम के वासी हैं।

श्रील जीव गोस्वामी के इस मत से श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर सहमत हैं कि द्विविद कुसंगति से दूषित हो गया था, जो श्रीमान् लक्ष्मण के प्रति अनादर व्यक्त करने का दण्ड था। किन्तु विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि यहाँ पर उल्लिखित मैंद तथा द्विविद वास्तव में नित्यमुक्त भक्त थे जिन्हें रामचन्द्रजी की पूजा के समय सेवक विग्रह कह कर पुकारा जाता है। भगवान् ने उनका पतन कुसंगति का दुष्परिणाम, जो महापुरुषों को अपमानित करने से प्राप्त होता है, दिखाने के लिए किया। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्विविद तथा मैंद के पतन की तुलना जय तथा विजय के पतन से करते हैं।

सख्यु: सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सख्यु:—अपने मित्र (नरक, जिसका वध कृष्ण ने किया था) का; स:—वह; अपचितिम्—उऋण; कुर्वन्—होने के लिए; वानर:—वानर; राष्ट्र—राज्य का; विप्लवम्—उत्पात करते हुए; पुर—नगर; ग्राम—गाँव; आकरान्—तथा खानों को; घोषान्—ग्वालों के समुदायों (बस्तियों) को; अदहत्—जला डाला; वह्निम्—आग; उत्सृजन्—फैलाकर।

अपने मित्र (नरक) की मृत्यु का बदला लेने के लिए द्विविद वानर ने नगरों, गाँवों, खानों तथा ग्वालों की बस्तियों में आग लगाते हुए उन्हें जलाकर पृथ्वी को तहस-नहस कर दिया।

तात्पर्य : कृष्ण ने द्विविद के मित्र नरक का वध कर दिया था अत: अपने मित्र का बदला लेने के लिए इस वानर ने कृष्ण के समृद्धिशाली साम्राज्य को नष्ट करना चाहा। श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् कृष्ण* में लिखा है, ''ग्रामों, नगरों तथा औद्योगिक स्थानों एवं खदानों और साथ ही साथ दुग्ध उद्योग एवं गो-रक्षा में व्यस्त व्यवसायियों के निवासस्थानों में आग लगा देना द्विविद का पहला काम था।''

क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ।
आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरि: ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—एक बार; स:—वह, द्विविद; शैलान्—पर्वतों को; उत्पाट्य—उखाड़ कर; तै:—उनके साथ; देशान्—सारे राज्यों को; समचूर्णयत्—विनष्ट कर दिया; आनर्तान्—आनर्तन प्रदेश (जिसमें द्वारका स्थित है) के लोगों को; सुतराम् एव—विशेष रूप से; यत्र—जहाँ; आस्ते—उपस्थित है; मित्र—उसके मित्र का; हा—मारने वाला; हरि:—कृष्ण।

एक बार द्विविद ने अनेक पर्वतों को उखाड़ लिया और उनका प्रयोग सभी निकटवर्ती राज्यों को, विशेषतया आनर्त प्रदेश को विध्वंस करने के लिए किया जहाँ उसके मित्र को मारने वाले, भगवान् हरि रहते थे।

क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूले न्यमज्जयत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—एक बार; समुद्र—समुद्र के; मध्य—बीच में; स्थः—स्थित; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; उत्क्षिप्य—मथ कर; तत्—उसके; जलम्—जल को; देशान्—राज्यों को; नाग—हाथी; अयुत—दस हजार; प्राणः—शक्ति वाले; वेला—समुद्रतटीय; कूले—किनारों को; न्यमज्जयत्—डुबो दिया।

दूसरे अवसर पर वह समुद्र में घुस गया और दस हजार हाथियों के बल के बराबर अपनी बाहों से उसके पानी को मथ डाला और इस तरह समुद्रतट के भागों को डुबो दिया।

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आश्रमान्—आश्रमों को; ऋषि—ऋषियों के; मुख्यानाम्—प्रमुख; कृत्वा—करके; भग्न—तोड़-फोड़; वनस्पतीन्—वृक्षों को; अदूषयत्—दूषित कर डाला; शकृत्—मल से; मूत्रैः—मूत्र से; अग्नीन्—अग्नियों को; वैतानिकान्—यज्ञ की; खलः—दुष्ट ने।

उस दुष्ट वानर ने प्रमुख ऋषियों के आश्रमों के वृक्षों को तहस-नहस कर डाला और अपने मल-मूत्र से यज्ञ की अग्नियों को दूषित कर दिया।

पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोनीगुहासु सः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशष्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पुरुषान्—पुरुषों को; योषितः—तथा स्त्रियों को; दृप्तः—ढीठ या उद्धत; क्ष्मा-भृत्—पर्वत की; द्रोणी—घाटी के भीतर; गुहासु—गुफाओं में; सः—उसने; निक्षिप्य—फेंक कर; च—तथा; अप्यधात्—बन्द कर दिया; शैलैः—बड़े बड़े शिलाखण्डों से; पेशष्कारी—भिड़, बर्र; इव—सदृश; कीटकम्—छोटे कीड़े को।

जिस तरह भिड़-कीट छोटे छोटे कीड़ों को बन्दी बना लेता है, उसी तरह उसने ढिठाई करके पुरुषों तथा स्त्रियों को पर्वत की घाटी में गुफाओं के भीतर डाल कर इन गुफाओं को बड़े बड़े शिलाखण्डों से बन्द कर दिया।

एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; देशान्—विविध राज्यों को; विप्रकुर्वन्—तंग करते; दूषयन्—दूषित करते हुए; च—तथा; कुल—कुलीन; स्त्रियः—स्त्रियों को; श्रुत्वा—सुनकर; सु-ललितम्—अत्यन्त मधुर; गीतम्—गीत; गिरिम्—पर्वत में; रैवतकम्—रैवतक नामक; ययौ—गया।

एक बार जब द्विविद निकटवर्ती राज्यों को तंग करने तथा कुलीन स्त्रियों को दूषित करने में इस तरह लगा हुआ था, तो उसने रैवतक पर्वत से आती हुई अत्यन्त मधुर गायन की आवाज सुनी। अतएव वह वहाँ जा पहुँचा।

तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥
गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अपश्यत्—देखा; यदु-पतिम्—यदुओं के स्वामी; रामम्—बलराम को; पुष्कर—कमल की; मालिनम्—माला पहने; सु-दर्शनीय—अत्यन्त आकर्षक; सर्व—समस्त; अङ्गम्—अंगों को; ललना—युवतियों के; यूथ—समूह के; मध्य-गम्—बीच में; गायन्तम्—गाते हुए; वारुणीम्—वारुणी शराब को; पीत्वा—पीकर; मद—नशा से; विह्वल—अस्थिर; लोचनम्—आँखों को; विभ्राजमानम्—शोभायमान, चमचमाते; वपुषा—अपने शरीर से; प्रभिन्नम्—कामोन्मत्त; इव—मानो; वारणम्—हाथी।

वहाँ उसने यदुओं के स्वामी श्री बलराम को देखा जो कमल-पुष्पों की माला से सुशोभित थे और जिनका हर अंग अत्यन्त आकर्षक लग रहा था। वे युवतियों के मध्य गा रहे थे और चूँकि उन्होंने वारुणी मदिरा पी रखी थी अतएव उनकी आँखें इस तरह घूम रही थीं मानो वे नशे में हों। उनका शरीर चमचमा रहा था और वे कामोन्मत्त हाथी की तरह व्यवहार कर रहे थे।

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दुष्टः—दुष्ट; शाखा-मृगः—वानर (वृक्षों की शाखाओं में रहने वाला पशु); शाखाम्—शाखा पर; आरूढः—चढ़ कर; कम्पयन्—हिलाते हुए; द्रुमान्—वृक्षों को; चक्रे—किया; किलकिला-शब्दम्—किलकिल की आवाज किलकारियाँ; आत्मानम्—अपने आपको; सम्प्रदर्शयन्—दिखलाते हुए।

वह दुष्ट वानर वृक्ष की शाखा पर चढ़ गया और वृक्षों को हिलाकर तथा किलकारियाँ मारते हुए अपनी उपस्थिति जताने लगा।

तात्पर्य : *शाखामृग* शब्द सूचित करता है कि द्विविद सामान्य बन्दरों की तरह वृक्षों पर चढ़ जाता था। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, ''द्विविद नामक वह वानर वृक्षों पर चढ़ कर एक शाखा से दूसरी शाखा

पर कूद सकता था। कभी कभी वह शाखाएँ हिलाकर विशेष प्रकार की 'किल-किल' ध्वनि करता था। इससे श्री बलराम का ध्यान मनमोहक वातावरण की ओर से विचलित हो गया।''

तस्य धाष्ट्र्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस; धाष्ट्र्यम्—धृष्टता, ढिठाई; कपेः—वानर की; वीक्ष्य—देखकर; तरुण्यः—तरुण स्त्रियाँ; जाति—स्वभाव से; चापलाः—चंचल, अगम्भीर; हास्य-प्रियाः—हँसोड़; विजहसुः—जोर से हँसीं; बलदेव-परिग्रहाः—बलदेव की प्रेयसियाँ।

जब बलदेव की प्रेयसियों ने वानर की ढिठाई देखी तो वे हँसने लगीं। आखिर वे तरुणियाँ थीं, जिन्हें हँसी-मजाक भाता था और वे चपल थीं।

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैर्सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षितः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ताः—उन (तरुणियों) का; हेलयाम् आस—मजाक उड़ाया; कपिः—वानर ने; भ्रू—अपनी भौंहों के; क्षेपैः—गंदे संकेतों से; सम्मुख—उनके सामने खड़े होकर; आदिभिः—इत्यादि से; दर्शयन्—दिखलाते हुए; स्व—अपना; गुदम्—मलद्वार; तासाम्—उनको; रामस्य—बलराम के; च—तथा; निरीक्षितः—देखते हुए।

बलराम के देखते हुए भी द्विविद ने उन तरुणियों को अपनी भौंहों से गंदे इशारे करते हुए, उनके सामने आकर खड़े होकर और उन्हें अपनी गुदा (मलद्वार) दिखलाकर अपमानित किया।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: ''वह वानर इतना उद्दंड था कि बलरामजी की उपस्थिति में भी वह अपने शरीर के निचले अंगों को स्त्रियों के समक्ष प्रदर्शित करने लगा। कभी कभी वह अपनी भौंहें चलाते हुए आगे बढ़कर अपने दाँत दिखलाता था।'' श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि द्विविद स्त्रियों के निकट आ जाता, इधर-उधर घूमता और पेशाब कर देता।

तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ।
गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ १४ ॥
निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ।
कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस पर, द्विविद पर; ग्राव्णा—शिला; प्राहरत्—फेंका; क्रुद्धः—क्रुद्ध; बलः—बलराम ने; प्रहरताम्—हथियार फेंकने वालों का; वरः—सर्वश्रेष्ठ; सः—वह, द्विविद; वञ्चयित्वा—बचाकर; ग्रावाणम्—शिला को; मदिरा—शराब का; कलशम्—पात्र; कपिः—वानर ने; गृहीत्वा—पकड़ कर; हेलयाम् आस—मजाक उड़ाया; धूर्तः—धूर्त; तम्—उसको, बलराम को; कोपयन्—क्रोध करते; हसन्—हँसते; निर्भिद्य—तोड़ कर; कलशम्—पात्र को; दुष्टः—दुष्ट; वासांसि—वस्त्रों को (तरुणियों के); आस्फालयत्—खींच लिया; बलम्—बलराम को; कदर्थीकृत्य—अनादर करके; बल-वान्—शक्तिशाली; विप्रचक्रे—अपमान किया; मद—मिथ्या अहंकार से; उद्धतः—फूला हुआ।

सर्वश्रेष्ठ योद्धा बलराम ने क्रुद्ध होकर उस पर एक शिला फेंकी किन्तु उस धूर्त वानर ने अपने को उस शिला से बचा कर बलराम के शराब के पात्र को उड़ा ले गया। दुष्ट द्विविद ने बलराम की हँसी उड़ाते हुए उन्हें और अधिक क्रुद्ध करके उस पात्र को तोड़ डाला और तरुणियों के वस्त्र खींच कर बलराम को और भी अधिक अपमानित किया। इस तरह मिथ्या गर्व से फूलकर कुप्पा हुआ बलशाली वानर श्री बलराम का अपमान करता रहा।

तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ।
क्रुद्धो मुषलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तस्य—उसकी; अविनयम्—ढिठाई; दृष्ट्वा—देखकर; देशान्—राज्यों को; च—तथा; तत्—उसके द्वारा; उपद्रुतान्—तहस-नहस किये; क्रुद्धः—क्रुद्ध; मुषलम्—अपनी गदा; आदत्त—ग्रहण की; हलम्—अपना हल; च—तथा; अरि—शत्रु; जिघांसया—मारने की इच्छा से।

भगवान् बलराम ने उस वानर के ढीठ आचरण को देखा और आसपास के राज्यों में उसके द्वारा उत्पन्न विनाश-लीला (उपद्रव) का विचार किया। इस तरह बलराम ने क्रुद्ध होकर अपने शत्रु का अन्त करने का निश्चय करके अपनी गदा तथा अपना हल उठा लिया।

तात्पर्य : *अविनयम्* का अर्थ है "विनय से रहित।" विनय तथा शालीनता से रहित द्विविद ने निर्लज्जतापूर्वक अत्यन्त दुष्ट कृत्य किये। द्विविद ने बलराम के समक्ष जो छिछोरा आचरण प्रदर्शित किया उसके अतिरिक्त उसके द्वारा सामान्य लोगों के प्रति किये गये महान् उपद्रवों से बलराम अवगत थे। अतः अपराधी वानर को अब मरना होगा।

द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ।
अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्ध्न्यताडयत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

द्विविदः—द्विविद; अपि—भी; महा—महान्; वीर्यः—बल वाला; शालम्—शाल वृक्ष को; उद्यम्य—उठाकर; पाणिना—अपने हाथ से; अभ्येत्य—पास आकर; तरसा—तेजी से; तेन—उससे; बलम्—बलराम को; मूर्धनि—सिर पर; अताडयत्—मारा।

बलशाली द्विविद भी युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। एक हाथ से शाल का वृक्ष उखाड़ कर

वह बलराम की ओर दौड़ा और उनके सिर पर उस वृक्ष के तने से प्रहार किया।

तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ।
प्रतिजग्राह बलवान्सुनन्देनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (तने) को; तु—लेकिन; सङ्कर्षणः—बलराम ने; मूर्ध्नि—सिर पर; पतन्तम्—गिरते हुए; अचलः—न हिलने वाला पर्वत; यथा—जिस तरह; प्रतिजग्राह—पकड़ लिया; बल-वान्—बलशाली; सुनन्देन—अपनी गदा सुनन्द से; अहनत्—प्रहार किया; च—तथा; तम्—उस (द्विविद) पर।

किन्तु भगवान् संकर्षण पर्वत की तरह अचल बने रहे और अपने सिर के ऊपर गिरते हुए लट्ठे को यों ही दबोच लिया। तब उन्होंने द्विविद पर अपनी सुनन्द गदा से प्रहार किया।

मूषलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ।
गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ।
तेनाहनत्सुसङ्क्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ॥ २० ॥
ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

मूषल—गदा से; आहत—प्रहार किया; मस्तिष्कः—खोपड़ी; विरेजे—सुशोभित हुई; रक्त—खून की; धारया—धारा से; गिरिः—पर्वत; यथा—जिस तरह; गैरिकया—गेरू से; प्रहारम्—प्रहार; न—नहीं; अनुचिन्तयन्—गम्भीर मानते हुए; पुनः—फिर; अन्यम्—दूसरे (वृक्ष) को; समुत्क्षिप्य—उखाड़ कर; कृत्वा—करके; निष्पत्रम्—पत्तियों से रहित; ओजसा—बलपूर्वक; तेन—उसके द्वारा; अहनत्—प्रहार किया; सु-सङ्क्रुद्धः—पुरजोर क्रोध के साथ; तम्—उसको; बलः—बलराम ने; शतधा—सैकड़ों खंडों में; अच्छिनत्—छिन्न-भिन्न कर डाला; ततः—तब; अन्येन—दूसरे से; रुषा—क्रोधपूर्वक; जघ्ने—चूर चूर कर दिया; तम्—उसको; च—तथा; अपि—भी; शतधा—सैकड़ों खंडों में; अच्छिनत्—तोड़ डाला।

खोपड़ी पर भगवान् की गदा से चोट खाकर द्विविद रक्त की धार बहने से उसी तरह सुशोभित हो रहा था जिस तरह कोई पर्वत गेरू से सुन्दर लगने लगता है। उसने घाव की परवाह न करके दूसरा वृक्ष उखाड़ा, बलपूर्वक उसकी पत्तियाँ विलग कीं और पुनः भगवान् पर प्रहार किया। अब बलराम ने क्रुद्ध होकर वृक्ष के सैकड़ों टुकड़े कर डाले। इस पर द्विविद ने दूसरा वृक्ष हाथ में लिया और फिर से बहुत ही रोषपूर्वक भगवान् पर प्रहार किया। भगवान् ने इस वृक्ष के भी सैकड़ों खण्ड कर डाले।

एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ।
आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; युध्यन्—(द्विविद ने) युद्ध करते हुए; भगवता—भगवान् द्वारा; भग्ने भग्ने—बारम्बार तोड़े जाने पर; पुनः पुनः—फिर फिर; आकृष्य—उखाड़ कर; सर्वतः—सभी ओर से; वृक्षान्—वृक्षों को; निर्वृक्षम्—वृक्षरहित; अकरोत्—कर दिया; वनम्—वन को।

इस तरह भगवान् से युद्ध करते द्विविद जिस भी वृक्ष से भगवान् पर प्रहार करता उसके बारम्बार विनष्ट हो जाने पर वह चारों ओर से तब तक वृक्ष उखाड़ता रहा जब तक कि जंगल वृक्षविहीन नहीं हो गया।

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत्सर्वं चूर्णयां आस लीलया मुषलायुधः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अमुञ्चत्—उसने फेंका; शिला—चट्टान की; वर्षम्—वर्षा; बलस्य उपरि—बलराम के ऊपर; अमर्षितः—हताश होकर; तत्—उस; सर्वम्—समस्त; चूर्णयाम् आस—पीस डाला; लीलया—आसानी से; मुषल-आयुधः—गदाधारी ने।

तत्पश्चात् क्रुद्ध वानर ने बलराम पर पत्थरों की वर्षा की किन्तु उस गदाधारी ने उन सबों को चकनाचूर कर डाला।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं : ''जब और वृक्ष नहीं बचे तब द्विविद ने पर्वतों की सहायता ली और बलरामजी के शरीर पर बड़े बड़े पत्थरों की वर्षा करने लगा। भगवान् बलराम ने खेल-खिलवाड़ करते हुए उन विशाल पत्थरों को तोड़ कर छोटे छोटे कंकड़ों में परिणत कर दिया।'' आज भी ऐसे अनेक खेल हैं जिनमें पत्थर या गेंद को छड़ी या बल्ले से मारकर खेला जाता है। यह खेलने की इच्छा मूलतः भगवान् में पाई जाती है जिन्होंने खेल खेल में (*लीलया*) बलशाली द्विविद द्वारा फेंके गये बड़े बड़े शिलाखण्डों को चूर चूर कर दिया।

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; बाहू—दोनों भुजाएँ; ताल—ताड़ के वृक्ष; सङ्काशौ—जितनी बड़ी; मुष्टी—मुक्का में; कृत्य—करके; कपि—वानरों में; ईश्वरः—सबसे शक्तिशाली; आसाद्य—सामना करके; रोहिणी-पुत्रम्—रोहिणी के पुत्र बलराम को; ताभ्याम्—उन; वक्षसि—छाती पर; अरूरुजत्—मारा।

सर्वाधिक शक्तिशाली वानर द्विविद अब ताड़-वृक्ष जैसे आकार वाली भुजाओं के सिरे पर मुक्के बाँध कर बलराम के समक्ष आया और उनके शरीर पर अपने मुक्के मारे।

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुषललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

यादव-इन्द्रः—यादवों के प्रभु, बलराम ने; अपि—भी; तम्—उसको; दोर्भ्याम्—अपने हाथों से; त्यक्त्वा—एक ओर फेंक कर; मुषल-लाङ्गले—गदा तथा हल; जत्रौ—हँसली पर; अभ्यर्दयत्—जोर का प्रहार किया; क्रुद्धः—क्रुद्ध; सः—वह, द्विविद; अपतत्—गिर पड़ा; रुधिरम्—रक्त; वमन्—वमन करता हुआ।

तत्पश्चात् क्रुद्ध यादवेन्द्र ने अपनी गदा और हल को एक ओर फेंक दिया और अपने खाली हाथों से द्विविद की हँसली पर जोर का प्रहार किया। वह वानर रक्त वमन करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम *भगवान् श्रीकृष्ण* में श्रील प्रभुपाद ने लिखा है : ''इस बार बलरामजी अत्यन्त क्रोधित हो उठे। क्योंकि वानर उन पर हाथों से प्रहार कर रहा था अतएव बलरामजी ने भी उस पर अपनी गदा या हल से प्रहार नहीं किया। वे केवल मुक्के से वानर की हँसली (गले के पास की हड्डी) पर प्रहार करने लगे। यह प्रहार द्विविद के लिए प्राणान्तक सिद्ध हुआ।''

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

चकम्पे—हिल उठा; तेन—उसके; पतता—गिरने से; स—सहित; टङ्कः—चोटियों; स—सहित; वनस्पतिः—वृक्ष; पर्वतः—पर्वत; कुरु-शार्दूल—हे कुरुओं में सिंह (महाराज परीक्षित); वायुना—वायु से; नौः—नाव; इव—मानो; अम्भसि—जल में।

हे कुरु-शार्दूल, जब वह गिरा तो रैवतक पर्वत अपनी चोटियों तथा वृक्षों समेत हिल उठा मानो समुद्र में वायु द्वारा हिलाई गई कोई नाव हो।

तात्पर्य : *टंक* शब्द न केवल पर्वत की चोटियों का सूचक है अपितु दरारों एवं पानी से भरे स्थानों का भी सूचक है। ये पर्वतीय क्षेत्र द्विविद के गिरने पर हिलने लगे।

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

जय-शब्दः—जय (विजय) की ध्वनि; नमः-शब्दः—नमः (नमस्कार) की ध्वनि; साधु साधु इति—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा की पुकार; च—तथा; अम्बरे—आकाश में; सुर—देवताओं के; सिद्ध—सिद्धों के; मुनि-इन्द्राणाम्—तथा मुनियों के; आसीत्—थे; कुसुम—फूल; वर्षिणाम्—वर्षा करते।

स्वर्ग में देवता, सिद्धगण तथा मुनिगण निनाद करने लगे, ''आपकी जय हो, आपको

नमस्कार है, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा हुआ!'' और भगवान् पर फूल बरसाने लगे।

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवान्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निहत्य—मार कर; द्विविदम्—द्विविद को; जगत्—संसार के; व्यतिकर—उपद्रव; आवहम्—लाने वाले को; संस्तूयमानः—स्तुतियों द्वारा प्रशंसा किये जा रहे; भगवान्—भगवान् ने; जनैः—लोगों द्वारा; स्व—अपने; पुरम्—नगर (द्वारका) में; आविशत्—प्रवेश किया।

सारे संसार में उपद्रव मचाने वाले द्विविद को इस तरह मार कर भगवान् अपनी राजधानी लौट आये और लोगों ने रास्ते में उनका यशोगान किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध अन्तर्गत ''बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध'' नामक सतसठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।